शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आर्थिक सापेक्षता, चेतना का रूपान्तरण एवं धर्म जागृति से नव स्वस्थ समाज की संरचना

प्रो. बी. एल. जैन
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग,
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का समन्वित एवं संतुलित विकास किया जाना बहुत कठिन है। मनुष्य की चेतना को धर्ममय बनाना होगा, फिर ही नए समाज का निर्माण किया जा सकता है। अंधेरी गुफा में जब दीपक बुझ जाता है, तो व्यक्ति को कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। वैसे ही अर्थ में आसक्त मनुष्य को असमानता की खाई नहीं दिखाई देती है। सभी मनुष्यों को अपने विकास के लिए आर्थिक संसाधन आवश्यक है। आर्थिक आवश्यकता की संपूर्ति होने पर व्यक्ति को सुखानुभूति हो सकती है।इच्छा आकाश के समान अनन्त है। यह धार्मिक दृष्टि से व अर्थशास्त्रीय दोनों दृष्टियों से सत्य है। इच्छा का क्षेत्र आवश्यकताएँ से भी बड़ा है। सभी इच्छाएँ आवश्यकताएँ नहीं होती और सभी आवश्यकताएँ इच्छाएँ नहीं हो सकती है। इच्छा से आवश्यकता का क्षेत्र और आवश्यकता से माँग का क्षेत्र छोटा होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

मानव का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रहा है। इन चारों का समन्वित एवं संतुलित विकास किया जाना बहुत कठिन है। ऐतिहासिक एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य पर दृष्टिपात करें तो हमें यह दिखाई देता है कि प्राचीन समय में धर्म और मोक्ष की प्रधानता थी। अर्थ और काम गौण रूप में थे। आधुनिक समय में यह विपरीत रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। अर्थ और काम प्रधान रूप में तथा धर्म और मोक्ष गौण रूप में परिलक्षित हो रहा है। हम अर्थ के प्रति तथा भौतिक सुविधाओं के प्रति इतने आकर्षित हो रहे हैं कि हम मानवीय मूल्यों को विस्मृत तथा खत्म करते जा रहे हैं, क्योंकि हमारी चेतना के केन्द्र बिन्दु में अर्थ ही आच्छादित हो रहा है। उस अर्थ के कारण ही व्यक्ति में क्रोध, लोभ, अहंकार, प्रमाद बढ़ते जा रहे हैं तथा भूमि की अधिकतर वस्तुओं पर उसका स्वामित्व बढ़ता जा रहा है। यदि इसी असंतुलित ढंग से व्यक्ति का विकास होता रहेगा तो वह दिन भी दूर नहीं है जिससे अन्याय, अत्याचार, शोषण, राक्षस वृत्ति मनुष्य के अन्दर व्यापक रूप में समावेशित हो जायेगी। हमें उक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आर्थिक सापेक्षता को व्यापक रूप में बढ़ावा देना है, ताकि इस पृथ्वी का हर मानव अहिंसक एवं शान्ति के साथ अपना विकास कर सकें। सापेक्षता में अर्थ के साथ धर्म भी जुड़ा हुआ है। हमें अपना आर्थिक विकास धर्म के साथ करना है। हम अपरिग्रह से परिग्रह में पदार्थ, धन, धान्य आदि का संग्रह करने में दौड़ रहे हैं। उसके बाद भी मन की तुष्टि, इन्द्रियों की तृप्ति नहीं दिखाई दे रही है। मनुष्य सत्यमेव जयते के स्थान पर

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

असत्यमेव जयते का उद्‌गान करने में लगा हुआ है। इसलिए अर्थ के विषय में एक सापेक्ष दृष्टिकोण का निर्माण करना आवश्यक है। सापेक्ष दृष्टिकोण के निर्माण से कोई भी व्यक्ति भूखा तथा नंगा नहीं रहेगा। आर्थिक चिन्तन में हमें धर्म को महत्त्व दिया जाना है। धर्माशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों का समन्वय ही वर्तमान समस्या के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसी के माध्यम से स्वस्थ समाज की संरचना की जा सकती है।

आर्थिक साम्य : युग की आवश्यकता

आज समाज में अर्थ के क्षेत्र में अनेक विसंगतियां देखने को मिल रही हैं जैसे - किसी व्यक्ति के पास दो बीघे जमीन है तो किसी के पास रहने का आवास नहीं है, कोई महलों में रह रहा है, कोई सड़क पर रह रहा है। किसी के पास 50 जोड़ी कपड़े हैं तो किसी के पास दो जोड़ी भी नहीं है। ऐसी स्थिति में समाज का विकास ऊबड़-खाबड़ रूप में दिखाई दे रहा है। हमें समाज में सभी के विकास को ध्यान में रखकर सापेक्ष अर्थशास्त्र को विकसित करना होगा। शिक्षा के क्षेत्र में भी अर्थशास्त्र ने भूचाल मचा दिया है। जहाँ शिक्षा कुछ ही राशि में प्राप्त की जाती थी, आज वही शिक्षा लाखों रूपये में प्राप्त की जा रही है। शिक्षा जैसे पवित्र कार्य को भी अर्थ के द्‌वारा विकृत किया जा रहा है। शिक्षा समाज के विकास की एक आत्मा है। अर्थ उसका शरीर। अतः दोनों के परस्पर संतुलन से ही मनुष्य का विकास संभव है।

इन्द्रिय चेतना की अपेक्षा कर केवल उत्पादन और वितरण की समानता के आधार पर समाज की व्यवस्था को नहीं बदला जा सकता। समानता की व्यवस्था करने वाले ही विषमता उत्पन्न करते हैं। अतः उनकी चेतना का रूपान्तरण करना आवश्यक है। उनकी चेतना में धर्म का समावेश होगा तब ही यह कार्य संभव है। संग्रह की चेतना भी मनुष्य में है और विसर्जन की चेतना भी मनुष्य में है। आकांक्षा, स्पर्धा, संघर्ष, क्रूरता व प्रतिक्रिया के बीज मानवीय चेतना में छिपे हैं। मनुष्य की चेतना को धर्ममय बनाना होगा फिर ही नए समाज का निर्माण किया जा सकता है।

अधिकार, स्वामित्व और ममत्व की भवना की एक शक्तिशाली ग्रन्थि मस्तिष्क में बनी हुई है। उस ग्रन्थि की गांठ को विमोक्ष करना होगा। किसी मनुष्य में वह सूती धागे और किसी में रेशमी धागे की गांठ बनी हुई है। गांठ की तरतमता के आधार पर प्रयत्न की तरतमता भी अपेक्षित है। मानव मस्तिष्क की धुलाई उसी हिसाब से की जानी चाहिए। गरीबी अभिशाप व अमीरी वरदान है। अमीर व्यक्ति के पास जीवनोपयोगी सब वस्तुओं का संग्रह होता है। गरीब के पास अभाव होता है। गरीबी दुःख देती है, अमीरी सुख देती है। ऐसी धारणा समाज में व्याप्त है। अतः भेदभाव की चेतना को धर्म के माध्यम से जाग्रत करना होगा।

इच्छा आकाश के समान अनन्त है। यह धार्मिक दृष्टि से व अर्थशास्त्रीय दोनों दृष्टियों से तो सत्य है। इच्छा का क्षेत्र आवश्यकताओं से भी बड़ा है। सभी इच्छाएँ आवश्यकताएँ नहीं होती

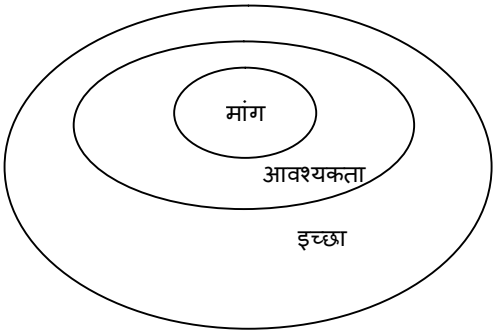

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

और सभी आवश्यकताएँ इच्छाएँ नहीं हो सकती है। इच्छा से आवश्यकता का क्षेत्र और आवश्यकता से माँग का क्षेत्र छोटा होता है।

गरीब व्यक्ति की माँग, आवश्यकताएँ व इच्छा सीमित होती है, जबकि धनी व्यक्ति की मांग आवश्यकता व इच्छा असीमित होती है। वह विलासितायुक्त इच्छाएँ रखता है, इसलिए उसकी माँग आवश्यकताएँ विस्तृत होती है। जहाँ इच्छाएँ अधिक होगी वहाँ अर्थ धर्म के साथ अर्जन किया जाये संभव नहीं हो सकता।

धर्ममय व्यक्ति की आवश्यकताएँ नैतिक, प्रामाणिक व आदर्शमय होगी। उनके आधार पर वह अपनी माँग, आवश्यकता व इच्छा का निर्माण करता है। लेकिन भौतिक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति की आवश्यकताएँ असीमित व असंतुलित होती है।

निष्कर्ष

आर्थिक सापेक्षता से तात्पर्य हम अपना अर्थ का अर्जन धर्म के साथ करना है। आर्थिक समानता, अपरिग्रह, संयमी, इन्द्रिय निग्रह, सीमित आवश्यकता व इच्छा नैतिक विचार, ईमानदारी, सत्य, प्रामाणिकता, विलासिता रहित जीवन, स्वार्थ की सीमा, साधन शुद्धि, सौन्दर्य प्रसाधन पर रूकावट, विकेन्द्रित अर्थ नीति, पूँजी का विकेन्द्रीकरण, श्रम की महत्ता, नियन्त्रित इच्छा, आवश्यकता व उपभोग से स्वस्थ समाज की संरचना की जा सकती है।

चेतना में हमेशा धर्म को सर्वोपरि मानकर कार्य करने की प्रवृत्ति विकसित करनी होगी, अन्यथा चेतना का स्तर इस भौतिकवाद में कभी भी निम्न स्तर का हो सकता है। अतः उच्च चेतना का स्तर हमेशा बनाना होगा। धर्म जागृति के बिना स्वस्थ समाज की संरचना असंभव है। आज अर्थ के समान धर्म विलुप्त हो रहा है, बिना धर्म के मानव का जीवन अशांति, कष्टमय, परेशान, दुःखमय है। अतः धर्म जागृति से स्वस्थ समाज की संरचना की जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य महाप्रज्ञ, 1994 महावीर का अर्थ शास्त्र, आदर्श साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली - 110002

2. आचार्य महाप्रज्ञ, 2005 अहिंसा के अछूते पहलू जैन विश्व भारती लाडनूं (नागौर, राज.)

3. आचार्य महाप्रज्ञ, 2005 अहिंसा और शांति आदर्श साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

4. सर श्री, 2011 शांति शक्ति शांति साहित्य, 252, नारायण पेठ, लक्ष्मी रोड़, पुणे 411030

5. सर श्री, 2011 नींव नाइन्टी, शांति साहित्य, 252, नारायण पेठ, लक्ष्मी रोड़, पुणे 411030